❑ गणेश ललवानी

अभिशप्त नालन्दा

पूर्व दिन सन्ध्या होते ही हवा जैसे एक बारगी ही बन्द हो गई थी एवं एक असह्य उत्ताप ने पृथ्वी को मानो वेष्टन कर रख दिया था।

दूसरे दिन प्रभात हुआ। किन्तु, प्रकृति की उस शब्दहीन, रुद्ध श्वांस प्रतीक्षा का अवसान नहीं हुआ। सूर्य उदित हुआ, पर वह सूर्य प्रतिदिन का सूर्य नहीं था। उसका रंग था जैसे ताम्र। स्थविर मुदितभद्र विहार के एक प्रकोष्ठ में बैठकर धम्मपद का पाठ कर रहे थे। भिक्षु श्रमण उत्पल ने उनके चरणों के समीप आकर प्रणाम किया। विनीत स्वर में बोला— 'वन्दे!'

स्थविर मुख उठाकर आशीर्वाद की भंगिमा में हस्त उत्तोलित करते हुए बोले— 'आरोग्य'। उत्पल ताम्रवर्ण सूर्य की ओर उनकी दृष्टि आकृष्ट करता हुआ बोला— 'थेर! लगता है ब्राह्मणों का अभिचार आज सफल होगा।'

स्थविर उठकर कुछ क्षण तक सूर्य की ओर अपलक देखते रहे। फिर यथा स्थान उपवेशित होकर उत्पल की ओर देखते हुए बोले— 'भगवान तथागत की जैसी अभिरुचि।'

उत्पल द्वादश वर्ष पूर्व की एक घटना की ओर इंगित कर रहा था। घटना इस प्रकार थी :—

आज से ठीक बारह वर्ष पूर्व इसी भांति की प्रभात बेला में स्थविर जिस समय धर्मोपदेश दे रहे थे, दो तार्किक ब्राह्मणों ने सहसा उपस्थित होकर स्थविर को तर्क के लिए आह्वान किया। स्थविर भी उनकी अभिलाषानुसार तर्क में प्रवृत्त हो गए। किन्तु वे ब्राह्मण यथार्थत: तर्क का उद्देश्य लेकर नहीं आए थे। वे आए थे, स्थविर का अपमान करने। अत: तर्क में प्रवृत्त होते ही स्थविर पर कटूक्ति करने लगे। स्थविर तो क्षमाशील थे पर वह कटूक्ति पीड़ा का कारण बन गई श्रमणों एवं विद्यार्थियों के लिए। तरुण विद्यार्थियों के लिए तो वह इतनी असह्य हो गई कि क्रोधावेश में वे वस्त्र प्रक्षालित जल दोनों ब्राह्मणों के मस्तक पर निक्षेप कर बैठे। फलत: दोनों ब्राह्मणों ने कुपित होकर विहार का परित्याग तो कर दिया पर परित्याग के पूर्व विहारवासियों को बलपूर्वक कहा— 'आज से हमलोग सूर्योपासना करते हुए द्वादशवर्षीय अग्नि यज्ञ अनुष्ठान करेंगे और उस यज्ञ में आहुति रूप में प्रदान करेंगे नालन्दा विहार को। परिणामत: भस्मीभूत होकर धरापृष्ठ होता हुआ निश्चिह्न हो जाएगा यह नालन्दा।'

मुदितभद्र भगवान तथागत की अभिरुचि कहकर पुन: धम्मद पाठ में प्रवृत्त हो गए। कोई अन्य होता तो दीर्घ नि:श्वास फेंकता हुआ आत्म-रक्षा के लिए उद्यत हो जाता। किन्तु मुदितभद्र ने ऐसा कुछ नहीं किया। क्योंकि, वे दीर्घ साधना में अपनी इच्छा को सम्पूर्णतया विसर्जित कर बुद्ध की अभिरुचि की ही शेष नियामक के रूप में ग्रहण करने के अभ्यस्त हो चुके थे। अत: कोई किसी भी प्रकार से उनके चित्त की स्थिरता को नष्ट करने में सक्षम नहीं हो पाता। यदि ब्राह्मण का अभिचार आज सफल ही हो जाए तो क्या? मुदितभद्र का धैर्य उससे अणुमात्र भी विचलित नहीं हो सकता।

मुदितभद्र का धैर्य तो विचलित नहीं हुआ किन्तु विचलित हो गया अन्यान्य भिक्षु एवं विद्यार्थियों का धैर्य। वे तत्क्षण स्व-स्व प्रकोष्ठ परित्याग कर बाहर प्रांगण में आ खड़े हुए। उनके मुख पर भय और उद्वेग की ऐसी कालिमा छायी हुई थी जैसे वे मृत्यु के मुख में ही प्रवेश कर गए हैं। भिक्षुओं में एक अस्सी वर्ष के वृद्ध शीर्ण हाथ से चैत्य के भित्तिगात्र का अवलम्बन कर खड़े-खड़े चीत्कार करते हुए कह रहे थे— 'आज ब्राह्मणों की क्रोधाग्नि में भस्म होने का दिन आ गया है।'

यह बात उत्पल से कानों में भी पहुंची। अत: स्थविर से बोला— 'भदन्त, वर्तमान में इस विहार का परित्याग करना ही क्या श्रेयकर नहीं है?' स्थविर के मुख की प्रशान्ति उसी भांति अव्याहत थी। वे धीरे से बोले— 'जैसी तुम्हारी अभिरुचि! तुम लोग विहार परित्याग कर सकते हो... पर मैं नहीं करूंगा।'

दीर्घ नि:श्वाँस फेंकते हुए उत्पल बोला— 'भदन्त! आपको उपदेश देने की क्षमता मुझ में नहीं है किन्तु क्या अभिशप्त विहार में अवस्थान करना उचित होगा?'

स्थविर मुस्कुराए। बोले— 'उत्पल, विहार अभिशप्त हुआ है ऐसा मैं नहीं मानता। फिर भी यदि ब्राह्मणों के अभिचार से ही विहार को ध्वंस होना है तो विहार के साथ-साथ हमलोगों का ध्वंस होना भी अनिवार्य है। मात्र ये स्तूप, ये चैत्य, ये भिक्षु आवास ही विहार नहीं है, भिक्षुगण भी विहार के ही प्रमुख अंग हैं। अत: पृथ्वी के किसी प्रान्त में जाने पर भी हमारी रक्षा नहीं हो सकती। फिर क्यों हम विहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का परित्याग करें!'

उत्पल नतमस्तक होकर नम्र स्वरों में बोला— 'भदन्त! आपका कथन ही सत्य है।' तदुपरान्त वहां से उठकर चला गया। स्थविर पुनः धम्मपद पाठ में निमग्न हो गए। प्रकोष्ठ के बाहर आकर उत्पल फिर एक बार आकाश की ओर देखने लगा। देखा— ताम्रवर्ण सूर्य पर धूम्रवर्ण मेघ का एक सूक्ष्म आवरण आया हुआ है। सूर्य स्पष्टतः नहीं दिख रहा था। किन्तु प्रकृति का निरुद्ध भाव था उसी प्रकार अव्याहत।

सोपान श्रेणी अवरोहण कर उत्पल भिक्षु एवं विद्यार्थियों के मध्य उपस्थित हुआ। सूर्य के ताम्रवर्ण को देखकर जो कोलाहल उन लोगों के मध्य उत्थित हुआ वह अब भी स्तब्ध नहीं हुआ था।

चैत्य भित्ति का आश्रय लिए कुछ दूरी पर खड़े एक वृद्ध बोल रहे थे— 'क्या बुद्ध हमारी रक्षा करेंगे? त्रिशरण मंत्र रक्षा करेगा?' मृत्यु भय में उनका मुख उदग्र हो उठा था। उत्पल को लगा इन वृद्ध को ही सबसे अधिक मृत्यु भय है। विद्यार्थियों के मध्य से उत्पल वृद्ध की ओर अग्रसर हुआ। फिर उनके हाथों को धारण करता हुआ बोला— 'आर्य, धैर्य का अवलम्बन लें। यदि आप ही धैर्य खो बैठेंगे तो इन्हें सान्त्वना कौन प्रदान करेगा?'

विस्मित दृष्टि से वृद्ध उत्पल के मुख की ओर देखने लगे। कुछ कहने जा ही रहे थे कि बोलने का सामर्थ्य न पाकर धरती पर बैठ गए। स्कंध पर पड़ी संघटिका स्खलित होकर धूल में लोटने लगी। पर वृद्ध का ध्यान उधर नहीं था। एकदम विह्वल हो गए थे वे।

वृद्ध को धैर्य बंधाना व्यर्थ समझ उत्पल वहां अपेक्षा न कर सका। छोटे-छोटे स्तूपों से होकर प्रधान चैत्य की ओर अग्रसर होने लगा। कुछ दूर भी नहीं जा पाया कि उत्पल की दृष्टि मुंह के बल धरती पर गिरे हुए सुभद्र पर पड़ी। उसे इस स्थिति में देखकर भी किसी ने भी वहां दृष्टिपात नहीं किया। बल्कि पांवों से स्पर्श करते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे।

मुहूर्त्त मात्र का भी विलम्ब न कर उत्पल ने उसे उठाकर बैठाया। फिर झकझोर कर पुकारते हुए बोला— 'सुभद्र!' किन्तु सुभद्र प्रकृतिस्थ न हो सका। उसने अपने विस्फारित नेत्रों की दृष्टि उत्पल के मुख पर निबद्ध कर दी। उत्पल उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहने लगा— 'क्या हुआ सुभद्र? सूर्य देखकर डर गए हो?'

इतनी देर तक सुभद्र सोच रहा था वह मर गया है किन्तु, अब, जब देखा वह मरा नहीं है उसका साहस धीरे-धीरे लौट आया। वह उत्पल की ओर देखकर बोला— 'हां आर्य, मैं भयभीत हो गया हूं।' उत्पल सस्नेह उसकी पीठ पर पुनः हाथ फेरते हुए बोला— 'भय? मरने का क्या भय सुभद्र? तुमने उपसम्प्रदाय ग्रहण नहीं की है?'

सुभद्र इसका कोई प्रत्युत्तर नहीं दे सका। केवल उत्पल के मुख की ओर देखकर बोला— 'हां आर्य!'

ठीक इसी समय एक दूरागत कोलाहल सुनाई पड़ा। उत्पल झटपट उठकर खड़ा हो गया। देखा, विद्यार्थीगण किसी को लिए उसी ओर ही आ रहे थे।

भीड़ निकट आने पर उत्पल ने देखा वे लोग दो भिक्षुओं को रज्जुबद्ध कर घसीटते हुए वहिर्प्राकार की ओर लिए जा रहे थे एवं उन्हीं को केन्द्र बनाकर सबके सब चीत्कार कर रहे थे।

उत्पल उसी भीड़ को चीरता हुआ भिक्षुओं की ओर बढ़ने लगा। जिस विद्यार्थी ने रज्जुबन्धन पकड़ रखा था वह उनसे कह रहा था— 'तुम लोगों के पाप से ही आज विहार का अन्तिम दिन उपस्थित हुआ है। मृत्यु आसन्न हो गए हैं हम सभी। किन्तु एक साथ मरने का सौभाग्य तुम्हें नहीं देंगे। शायद इसी से तुम्हारे पाप का कथंचित प्रायश्चित हो सके। विहार की उत्तर सीमा पर जो विशाल गह्वर है उसी में हम तुम्हें फेंक देंगे प्राकार से। तुम्हारी उन विचूर्ण अस्थियों में से शकुनि एवं शृगाल मांस नोच-नोचकर भक्षण करेंगे।' ठीक उसी समय उत्पल भिक्षुओं के निकट पहुंच गया था। उसे गतिरोध करते देख सभी विद्यार्थी स्थिर हो गए। बोले— 'संघागारिक आप?'

जो विद्यार्थी यह सब कह रहा था उसका भी वाक्य स्रोत सहसा निरुद्ध हो गया।

उत्पल की दृष्टि उसी क्षण आलिन्द पर जा पड़ी। देखा— आलिन्द पर खड़े स्थविर कुछ कह रहे थे। किन्तु उनका कथन किसी के भी कानों में नहीं पहुंच रहा था, उत्पल के भी नहीं। ...पर वे क्या कह सकते हैं यह अनुमान करना उसके लिए कठिन नहीं था। अतः विद्यार्थियों को स्तब्ध होते देख उत्पल बोला— 'उत्तम! मैं संघागारिक और तुम लोगों का शिक्षक हूं। मैंने तुम लोगों को जो शिक्षा दी क्या यह उसी की परिणति है? उद्गत क्रोध चल मान रथ की भांति होता है जो उसे संहत कर सकता है उसी को मैं सारथी कहता हूं। अन्य तो मात्र रज्जु ही धारण किए होते हैं।'

'आर्य! आपकी बात सत्य है, परन्तु इनका अपराध भी तो गुरुतर है।' उत्पल बोला— 'यह मैं जानता हूं, किन्तु सौमिल, तुम्हारा अपराध भी कम नहीं है। अपराध के लिए दण्ड दे सकता है केवल संघ और कोई नहीं।'

सौमिल एवं अन्यान्य सभी विद्यार्थी परस्पर एक दूसरे का मुख देखने लगे।

उत्पल कह रहा था— 'बाल सुलभ चंचलतावश उस दिन इन्होंने संघ नियम के विरुद्ध अविनीत कार्य किया था। ...पर क्या संघ ने पाति मोक्ष के अनुसार इन्हें दण्ड नहीं दिया? यदि दिया तो फिर आज नवीन दण्ड की वार्ता क्यों चल पड़ी?' यह कहते-कहते उत्पल का कण्ठ-स्वर कुछ कठोर हो गया। उत्पल कुछ रुककर पुनः कहने लगा— 'सौमिल! मैं संघागारिक हूं। संघ ने जिस प्रकार हमें दण्ड देने की क्षमता स्थविर को प्रदान की है उसी प्रकार विद्यार्थियों को दण्ड देने की क्षमता मुझे प्रदान की है। इन्होंने संघ नियम के विरुद्ध अविनय प्रकट किया... पर तुमने तो संघ को ही अस्वीकार कर दिया। और संघ को अस्वीकार करने का एक मात्र दण्ड है— बहिष्कार। अतः तुम बुद्ध की पवित्र भूमि से निर्वासित हुए। आज सन्ध्या के पूर्व ही तुम विहार का परित्याग करो।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नि:शब्द थे सभी विद्यार्थी। सभी विस्मयाहत एवं निर्वाक् दृष्टि से उत्पल के मुख की ओर देख रहे थे। उत्पल ने स्वहस्त से अपराधियों को रज्जुमुक्त कर डाला। बन्धनमुक्त होते ही वे उत्पल के चरणों में लोट पड़े। बोले— 'आर्य, आज आपने हमें प्राणदान दिया।' उत्पल के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। उन अश्रुओं को पोंछकर उन्हें ऊपर उठाते हुए कहा— 'कोई भय नहीं है तुम लोगों को। शाक्य सिंह ने सभी जीवों पर करुणा करने को कहा है।' उन्हें लेकर उत्पल स्थविर के सम्मुख उपस्थित हुआ। भिक्षुओं की विक्षत देह को देखकर स्थविर के कपोलों पर अश्रुधारा बह चली। उनके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले— 'तुम लोगों का अपराध शान्त हो गया है, बुद्ध ने तुम पर करुणा की है।'

भिक्षुगण स्थविर के चरणों में नतमस्तक हो गए। बोले— 'भदन्त! किन्तु संशय नहीं मिट पा रहा है, आलोक तो दिखाई ही नहीं दे रहा है।' स्थविर उनके मस्तक पर स्वहाथ रख कहने लगे— 'संशय क्या मिटेगा? अनुतप्त हृदय से यदि प्रकाश नहीं दिख पड़ा तो फिर क्या दिखेगा?'

मध्याह्न हो चला था। सूर्य मस्तक पर आ चुका था। किन्तु प्रथम प्रभात का जो सूर्य एकबार दिखाई पड़ा वह पुन: नहीं देखा गया। प्रकृति का वह निस्तब्ध भाव जैसे समाप्त ही नहीं हो रहा था, उसी भांति सूर्य मुख पर का आवरण भी नहीं उठ रहा था। फिर भी मध्याह्न होने पर भिक्षु एवं विद्यार्थियों का भय कम हो चला था। वे सोचने लगे— निश्चित मृत्यु जैसे उन सब पर एक व्यंग्य कसकर चली गई। अत: अब तक जिस दैनन्दिन कार्य को वे भूल गए थे उसी के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो गए। कोई चैत्य संस्कार में लग गया, कोई जल लेने गया, कोई अन्न प्रस्तुत करने पाकशाला में प्रविष्ट हुआ। उत्पल को तो अब कुछ करने को था ही नहीं, आज का दिन अध्ययन विरति का था। अपने कक्ष में आकर पातिमोक्ष के पृष्ठ खोलकर बैठ गया।

खोलकर तो बैठ गया, किन्तु किसी भी प्रकार उसमें मन:संयोग न कर सका। आज प्रभात से ही जो कुछ घटित हुआ उसकी छायाकृति उसकी आंखों में तैर रही थी। उत्पल सोच तो वही सब रहा था किन्तु उस भावना का कोई निर्दिष्ट क्रम नहीं था। पर्वत से उतरते समय निर्झरिणी का जल जिस प्रकार उपलखण्ड के आघात से बिखर कर इधर-उधर विक्षिप्त-सा छिटक पड़ता है ठीक ऐसी ही स्थिति में थीं उसकी भावनाएं भी।

वह सोच रहा था वृद्ध भिक्षुक के विषय में कि उन्हें ही मृत्यु का समधिक भय क्यों? अभी भी उनकी दृष्टि में पृथ्वी उतनी ही तरुण एवं आकाश उतना ही नीला है? यदि ऐसा नहीं है तो पृथ्वी का परित्याग करने में उनका हृदय व्यथा से, द्रावक रस से क्यों भर उठा? शास्त्र कहते हैं जीर्ण वस्त्रों की भांति ही एक दिन इस शरीर को छोड़ देना होगा। ओह, इसके लिए इतना ममत्व! ममत्व? ममत्व ही क्या परिग्रह नहीं? क्या भगवान तथागत ने ममत्व का परित्याग करने को नहीं कहा है?व्यर्थ ही ये भिक्षु हुए हैं? अभी तक तो उनका देह-ममत्व भी दूर नहीं हुआ है। तभी अचानक सुभद्र की बात उसे स्मरण हो आई। ठीक ही तो है देह परित्याग के पूर्व भी तो मनुष्य इसी प्रकार अहरह मर रहा है। यही तो यथार्थ मृत्यु है। जिसे मृत्यु कहते हैं वह तो है उत्तरण। तब? मृत्यु भय ही है मृत्यु। जिसे मृत्यु भय नहीं वही अमर है। अमर होकर भी मनुष्य न जाने क्यों अपने अमृत-तत्व को भूल गया है। भूल गया है तभी तो मानव सामान्य भय से सामान्य क्षति से हिंस्र हो उठता है। आघात करता है, पीड़ित कर उल्लसित होता है। फिर सौमिल की बात याद हो आई। क्या सौमिल अब घर लौटेगा? नहीं लौटेगा तो फिर क्या करेगा? उसी ने तो उसे संघ से निर्वासित किया है। तब क्या वह जन्म-मृत्यु के स्रोत में फिर एक बार प्रवाहित होगा? कहां है उसका आश्रय? निराश्रय के लिए ही तो है आश्रय। भाग्य-विडम्बिता के लिए ही तो है त्रिशरण मंत्र। इसीलिए तो बुद्ध हैं करुणाधन। वे शान्ता हैं। तब क्या उसने निर्वासन दण्ड देकर भूल की है? नहीं, नहीं सौमिल संघ को अस्वीकार किया है। सत्य ही तो है जो शान्ता होता है वही तो होता है शास्ता। बुद्ध शास्ता भी हैं और उन्हीं का निदर्शन है यह पातिमोक्ष। उत्पल फिर एक बार पातिमोक्ष पढ़ने की चेष्टा करने लगा...। पर कहां कर पाया मन:संयोग। सहसा उसके मन में आया दया और करुणा एक नहीं है। दया में ममत्व है, करुणा निर्मम है। दया के उद्रेक का कारण दूसरे की परिस्थिति में स्वयं को भांपना है। किन्तु करुणा ऐसी नहीं है। करुणा अन्य की वेदना को अपनी ही वेदना समझती है। उस समय सत्व-सत्व में पार्थक्य नहीं रहता। तुम्हारा दु:ख है, मेरा दुख है तुम्हारा सुख मेरा सुख। वह सुख जरा-सा नहीं बहुत विशाल है। तभी यदि तुम्हारे कल्याण के लिए तुम्हें दु:ख देना पड़े तो दे सकते हैं। उस समय वह दु:ख तुम्हें नहीं स्वयं को ही दिया जाता है। तभी तो शान्ता उस समय शास्ता है जबकि दण्ड ही कल्याण है।

उत्पल ने जब सोचा दण्ड ही सौमिल के लिए कल्याणकारी है तब उसके हृदय से एक गुरुतर भार जैसे उतर गया। उसका समस्त अन्त:करण बोल उठा— 'सौमिल, मुझे तुमसे प्रेम है, मैं तुम्हारे कल्याण की कामना करता हूं। तभी तुम्हें दण्ड देने का अधिकार रखता हूं। तुम्हें दण्ड दिया है।' उत्पल की भावना ने फिर एक नवीन पथ पकड़ा। अब वह विहार के विषय में सोचने लगा कि यह विहार आज जिस अवस्था में है यह अवस्था उसकी पहले नहीं थी। एक समय यह अत्यंत समृद्ध था। उन दिनों देश-विदेशों से अर्थ आता था। केवल अर्थ ही नहीं तब दूर-दूरान्तरों से ज्ञानान्वेषियों का दल भी आता था। उनके अध्ययन-अध्यापन ने विहार को एक विशेष मर्यादा दी थी। ...पर आज कहां है वह ज्ञानान्वेषियों का दल? कहां है नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, वसुबन्धु, दिगनाग, धर्मपाल, शीलभद्र, धर्म कीर्ति, शान्तरक्षित? केवल उनकी धारा को वहन करने के लिए है स्थविर मुदितभद्र। तो क्या अब कोई आशा नहीं है? क्या नालन्दा अपना हतगौरव पुन: प्राप्त नहीं करेगा? तथागत का धर्म गौरव क्या सचमुच ही अस्तमित हो रहा है? कौन जाने क्या है?

उत्पल इसका कारण अनुसन्धान करने लगा। सोचने लगा— 'राजाओं की वीतश्रद्धा ही क्या इसका कारण है या विधर्मी तुर्कों का आक्रमण?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुर्कों ने इस विहार पर्यन्त को दग्ध कर डाला था। भिक्षुओं की नृशंस हत्या की थी। तब यही कारण हो सकता है। फिर भी यही एक कारण नहीं है। तब क्या है?' उत्पल पुनः मुदितभद्र की बात सोचने लगा। विहार ध्वंस कर जब तुर्क चले गए थे तब उन्होंने विहार एवं चैत्य का संस्कार करना प्रारम्भ किया था। उस दिन मुट्ठी भर भिक्षुओं को लेकर ही वे कार्य-प्रवृत्त हुए थे। अर्थ भी मिला मगध-मंत्री कुक्कुट सिद्ध से। किन्तु, सब कुछ अर्थ से ही नहीं होता। नवीन रूप से विहार निर्माण में उन्हें अपरिमेय परिश्रम करना पड़ा। उनके परिश्रम का ही तो प्रतिरूप है यह विहार। फिर तो विभिन्न स्थानों के भिक्षुओं एवं विद्यार्थियों का समागम भी होने लगा था। पर...

उत्पल सोचने लगा— 'लगता है इस क्षेत्र में दैव ही प्रतिकूल हैं। मन ही मन वह यह कहे बिना नहीं रह सका। 'अमिताभ! देखना, स्थविरों का प्राणप्रात परिश्रम कहीं व्यर्थ न हो जाए!

'भगवान तथागत की अभिरुचि।'

उत्पल ने पीछे घूमकर देखा। किन्तु कोई दिखाई नहीं पड़ा। शायद यह भ्रान्ति थी। लेकिन उसने स्पष्ट ही तो सुना था जैसे कोई उसके पीछे से बोल रहा था, 'भगवान तथागत की अभिरुचि।'

उत्पल भित्ति गात्र पर भूमि स्पर्श मुद्रा में उत्कीर्ण बोधिसत्व की मूर्ति की ओर देखता हुआ करबद्ध होकर बोल उठा— 'भगवान तथागत की अभिरुचि ही पूर्ण हो।'

'देख रहे हो, देख रहे हो...'

बाहर पुनः कोलाहल होने लगा। उसी कोलाहल को लक्ष्य करता हुआ उत्पल बाहर आ खड़ा हुआ। देखा कुछ मेघ अंश हट जाने से सूर्य प्रकाशित हो उठा है। सूर्य क्या था साक्षात् अग्निपिण्ड।

उसी समय वे वृद्ध यष्टि पर भार दिए उत्पल के समीप आ गए थे। उत्पल का हाथ स्पर्श करते हुए बोले, 'देख रहे हो, क्या देखा? उनका कण्ठ-स्वर विकृत था। उत्पल बोला— 'सूर्य'।

'सूर्य? नहीं, मैं तो देख रहा हूं ब्राह्मणगण यज्ञाग्नि में आहुति प्रदान कर रहे हैं। आज द्वादश वर्ष पूर्ण हो गया है।'

उत्पल बिना कुछ उत्तर दिए ही सूर्य की ओर देखता हुआ स्थिर खड़ा रहा।

किन्तु सूर्य अधिक देर तक नहीं रहा, पुनः मेघ ने ग्रास कर लिया। जो स्तब्धता समस्त दिन अव्याहत थी वही स्तब्धता मुहूर्त्त भर के लिए और कठोर हो गई। फिर न जाने क्या हुआ कि समस्त धरती काँप उठी। भू-गर्भ से एक अवरुद्ध गर्जन मरणाहत दैत्य की भाँति आर्त्तनाद करता हुआ बाहर आया। वृद्ध गिरने ही जा रहे थे कि मानता कृत स्तूप का आश्रय लेकर किसी प्रकार खड़े रहे। सूर्य देखने के लिए भिक्षुगण अपना-अपना कार्य छोड़कर बाहर आ गए थे। इस बार उनके चीत्कार से आकाश-बातास परिपूरित हो उठे। एक क्षण के लिए उत्पल भी हतप्रभ हो उठा। उसे लगा— जैसे पदतल स्थित मृत्तिका निम्नाभिमुख होकर धँसी जा रही है। स्तूप का भित्तिगात्र काँप रहा है। ...दूर बहिर्प्राकार का एक विराट अंश भंग हो रहा है। उसके गिरने की आवाज ने कानों को वधिर कर डाला। उसी स्थान से प्रचुर धूल उत्क्षिप्त होकर चक्कर काटती हुई उसी की ओर अग्रसर हो रही थी।

भूमिकम्प का वेग स्थिर होते ही उत्पल स्थविरों के प्रकोष्ठ की ओर चल पड़ा। देखा— सभी अपने-अपने प्राणों की रक्षा में व्यस्त परस्पर एक दूसरे को ढकेलते हुए, गिरे हुए को कुचलते हुए दौड़े जा रहे हैं। कोई आर्त्तनाद कर रहा है तो कोई त्रिशरण मंत्र उच्चारण कर रहा है।

'थेर।'

स्थविर ने मुख उठाकर देखा। बोले 'उत्पल, तुमने विहार का परित्याग नहीं किया?'

उत्पल बोला, 'थेर! मैं आपको लेने आया हूं।'

स्थविर हंस पड़े, बोले, 'कहां ले जाओगे उत्पल?'

और द्विगुण वेग से भूमिकम्प प्रारम्भ हो गया। उत्पल सोचने लगा— 'ठीक ही तो है जब पृथ्वी ही आज क्षिप्त है तब आश्रय कहां?'

स्थविर उत्पल के मुख की ओर देखकर बोले, 'तुम जाओ उत्पल, मैं स्थान त्याग नहीं कर सकता।' उत्पल हाथ जोड़कर कहने लगा— 'थेर! ऐसी अनुमति मत दीजिए।'

स्थविर पुनः एकबार उत्पल के मुख की ओर देखने लगे। फिर धीरे से बोले— 'उत्पल, मैं तुम्हारा आचार्य हूं। मेरा आदेश है, तुम प्रकोष्ठ परित्याग कर इस स्थान की अपेक्षा निरापद स्थान पर चले जाओ।'

उत्पल ने स्थविर के आदेश की उपेक्षा जीवन में कभी नहीं की थी पर आज उनकी आज्ञा को भी अवहेलित सा कर रहा था। किन्तु, सहसा जो कुछ उसे दृष्टिगत हुआ उससे वह स्थिर न रह सका। उसने जो कुछ देखा वह एक भयंकर दुःस्वप्न की भांति था। उसकी समस्त देह जैसे जमकर हिम हो गई। देखा— विहार का विशाल पुस्तकालय 'रत्नोदधि' जिस ओर था वहां से प्रचुर धूमपूंज पर लपकती हुई अग्नि-शिखा मुंह बाएं धांय-धांय कर रही थी। दीर्घ संचित ज्ञानराशि की जो कुछ रक्षा हो सकी थी वह भी आज समाप्त होने जा रही थी। क्या उसकी रक्षा का कोई उपाय नहीं?

उत्पल अन्धवेग से उसी ओर दौड़ पड़ा। यद्यपि बार-बार उसके चरण स्खलित हो रहे थे फिर भी भागा जा रहा था। देखा— भिक्षुगण उस समय भी विभ्रान्त की भांति पथ भ्रष्ट होकर इधर-उधर दौड़ रहे थे।

'सुभद्र।'

सुभद्र उस समय भित्तिगात्र की बुद्ध मूर्ति के सम्मुख घुटने टेक कर बैठा प्रार्थना कर रहा था। कह रहा था 'रक्षा करो वज्रपाणि, रक्षा करो।'

प्रचण्ड वेग से उत्पल ने उसे अपनी ओर आकृष्ट किया। बोला— 'नहीं देख रहे हो भित्तिगात्र कांप रहा है। किसी भी क्षण वह गिर सकता है। बर्हिद्वार की ओर जाओ।' फिर सुभद्र ने क्या किया यह देखने को वह रुक न सका। बस उसी अग्नि को लक्ष्य करता हुआ दौड़ने लगा।

एक मुहूर्त्त के लिए उत्पल पुनः एकबार खड़ा हुआ। सुना, जैसे कोई कह रहा था— 'मैं जानता हूं वेनु, विहार का ऐश्वर्य कहां रक्षित है? कौन देख रहा है? चल न, अपने उसी ऐश्वर्य को बांट लें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह सुनकर उत्पल खड़ा न रह सका, न ही विहार के ऐश्वर्य की रक्षा करने को उद्यत हुआ, न ही वेनु एवं उसके साथी को नैतिक पतन से बचाने की सोच सका। पर यह स्मरण अवश्य हो आया यह वेनु राजगृह से किसी कार्योपलक्ष में आया था। एक वेदना तीक्ष्ण सूचि की भांति उसे विद्ध करने लगी। पुनः एकबार दोहरा उठा— 'भगवान् तथागत, आपकी अभिरुचि ही पूर्ण हो।'

किन्तु उत्पल जिस कार्य के लिए आया था वह असम्भव था। ग्रन्थागार के भिक्षुओं ने प्रथम तो उसकी रक्षा के लिए चेष्टा की। किन्तु जब अवस्था उनके सामर्थ्य के बाहर हो गई वे निरस्त हो गए। उत्पल उनके पास आकर खड़ा हो गया। देखा, बहुदिन सयत्न संग्रहित पुस्तकें जल-जलकर भस्म हो रही थीं। उत्क्षिप्त धूम्र ऊर्ध्वगमन कर रहा था। उस पर प्रवाहित वायु भी उस ताण्डव को सहयोग दे रहा था। ज्वलन्त अंगार एवं भस्म उड़-उड़कर चतुर्दिक गिर रही थी।

भूमिकम्प तो बन्द हो गया था किन्तु वह किसी भी क्षण पुनः प्रारम्भ हो जाएगा। यह सम्भावना बनी हुई थी। उत्पल सोचने लगा— भूमिकम्प होना तो स्वाभाविक है, पर यह अग्निकांड? ग्रन्थागार में अग्नि लगी तो कैसे? यज्ञाग्नि? किन्तु इस पर विश्वास करने की इच्छा नहीं होती। तब कौन सा कारण हो सकता है? किसी ने अग्नि-संयोग तो नहीं कर दिया।

उत्पल ग्रन्थागार के संरक्षकों के निषेध की अवहेलना करता हुआ उस अग्नि वृष्टि के मध्य अग्रसर होने लगा। देखा— अग्नि की लपलपाती हुई लपटें और प्रोज्ज्वल होती जा रही थीं। कभी वह शिखा घननील, कभी पाण्डुर, कभी रक्तवर्ण हो रही थी अयुत नागिन के फणों की भांति सिर उठाए वे नृत्य कर रही थीं। कभी-कभी मन्द हो जाती, पर मात्र द्विगुण वेग से जल उठने के लिए ही।

अनेक भिक्षु एवं विद्यार्थी वहिर्द्वार के बाहर चले गए। जैसे वे मृत्यु के ही बाहर हो गए हों। अतः उन्मुक्त से कलरव कर रहे थे। इसीलिए यह कोई सोच नहीं सका कि विहार के अन्यान्य अंश की अग्निदाह से रक्षा की जा सकती थी। उन्होंने तो बस सोच ही लिया था कि वह विहार का अन्तिम दिन था।

उत्पल अग्रसर होता गया। किन्तु अब और अधिक अग्रसर होना असम्भव था। धूम्र और वाष्प ने उसके चक्षुओं को अवरुद्ध कर दिया। प्रज्ज्वलित अंगार उड़-उड़कर चतुर्दिक जो कुछ भी दाह्य पदार्थ था सब जला रहे थे।

उत्पल ने ज्योंहि सम्मुख कदम रखा उसके पद आघात से कोई आर्त्तनाद कर उठा। वह चमक कर एक ओर हो गया। बोला— 'कौन?'

उत्तर न पाकर वह नीचे झुककर देखने लगा। 'अरे! मनुष्य-देह ही तो है!' पूछा— 'कौन हो तुम?'

वह देह कुछ हिल उठी। बोली— 'ब्राह्मण!'

उसका अर्द्धदग्ध मुख विकृत हो रहा था। अतः पहचान तो नहीं सका, पर उस शब्द ने सब कुछ सुबोध कर दिया। बोला— 'क्या तुम्हीं ने ग्रन्थागार में अग्नि संयोग किया था? तुम्हारे पाप की सीमा नहीं है। किन्तु, बुद्ध तुम्हें क्षमा करेंगे।' फिर कुछ रुककर बोला, 'लगता है तुम्हारे प्राण बच सकते हैं। तुम मेरा अवलम्बन लेकर उठ सकते हो?'

ब्राह्मण से प्रत्युत्तर पाने के पूर्व ही पृथ्वी पुनः एक बार कांप उठी। वह कम्पन इतना प्रचण्ड था कि धरापृष्ठ स्थान-स्थान पर फट गया। बौद्ध विहार का सब कुछ रसातल में धंसने लगा।

उत्पल ब्राह्मण को निरापद स्थान में ले जाने की चेष्टा कर रहा था पर लड़खड़ाकर गिर पड़ा और कभी न उठ सका। समस्त धरती और आकाश भिक्षुओं एवं विद्यार्थियों के आर्त्त चीत्कार से पुनः एकबार भर उठा।

पृथ्वी तब भी कांप रही थी, मरणोन्मत्त वेग से कांप रही थी कहीं कुछ नीचे धंस रहा था, कहीं जल और कर्दम ऊपर की ओर उछल रहा था। भिक्षुगण विक्षिप्त से दौड़ा भागी कर रहे थे। ...पर कहां था आश्रय। कोई धंसान के साथ नीचे जा रहा था। कोई कीचड़ के साथ ऊपर जाकर पुनः खड्ड में गिर रहा था। चारों ओर अग्नि-व्याप्त हो रही थी।

दूसरे दिन जब फिर सूर्य उदित हुआ उस विहार का कोई चिह्न ही अवशेष नहीं था। पृथ्वी ने पूर्णतः ग्रास कर लिया था उस विराट् विहार को। किन्तु हां, धरती के उस आलोड़न के परिणाम-स्वरूप जो कुछ उठना, धंसना परिवर्तन हुआ वह प्रकृति की उस निष्ठुर लीला की जैसे साक्षी दे रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org